More Ebooks: http://vinitaa.shah.googlepages.com
Edited by Foxit Reader
Copyright(C) by Foxit Software Company,2005-2006
For Evaluation Only.

Premchand

Prerna

Chapter 1

DV

मेरी कक्षा में सूर्यप्रकाश से ज्यादा ऊधमी कोई लड़का न था। बल्कि यों कहो कि अध्यापन-काल के दस वर्षों में मुझे`सी विषम प्रकृति के शिष्य से साबका न पड़ा था। कपट-क्रीड़ा में उसकी जान बसती थी। अध्यापकों को बनाने और चिढ़ाने उद्योगी बालकों को छेड़ने और रूलाने में ही उसे आनन्द आता था।`से`से षड्यन्त्र रचता,`से`से फंदे डालता,`से`से बाँधनू बाँधता कि देखकर आश्चर्य होता था। गरोहबंदी में अभ्यस्त था।

खुदाई फौजदारों की क फौज बना ली थी और उसके आतंक से शाला पर शासन करता था। मुख्य अधिष्ठाता की आज्ञा टल जाय, मगर क्या मजाल कि कोई उसके हुक्म की अवज्ञा कर सके। स्कूल के चपरासी और अर्दली उससे थरथर काँपते थे। इंस्पेक्टर का मुआइना होने वाला था,

मुख्य अधिष्ठाता ने हुक्म दिया कि लड़के निर्दिष्ट समय से आधा घंटे पहले आ जायँ। मतलब यह था

कि लड़कों को मुआइने के बारे में कुछ जरूरी बातें बता दी जायँ। मगर दस बज ग, इंस्पेक्टर साहब

आकर बैठ ग, और मदरसे में क लड़का भी नहीं । ग्यारह बजे सब छात्र इस तरह निकल पड़े जैसे पिंजड़ा खोल दिया हो। इंस्पेक्टर साहब ने कैफियत में लिखा-डिसिप्लिन बहुत खराब है। प्रिंसिपल साहब की किरकिरी हुई, अध्यापक बदनाम हु और यह सारी शरारत

सूर्य प्रकाश की थी। मगर बहुत पूछ-ताछ करने पर भी किसी ने सूर्यप्रकाश का नाम तक न लिया। मुझे अपनी संचालन विधि पर गर्व था। ट्रेनिंग कालेज में इस विषय में मैंने ख्याति प्राप्त की थी। मगर यहाँ मेरा सारा संचालन कौशल मोर्चा खा गया था। कुछ अक्ल ही काम नहीं करती कि शैतान को कैसे मार्ग पर लायें। कई बार अध्यापकों को बैठक हुई ; पर यह गिरह न खुली। नयी शिक्षाविधि के अनुसार मैं दंड़नीति का पक्षपाती न था, मगर हम यहाँ इस नीति से केवल इसलि विरक्त थे कि कहीं उपचार रोग से भी असाध्य न हो जाय। सूर्यप्रकाश को स्कूल से निकाल देने का प्रस्ताव भी किया गया, पर इसे अपनी अयोग्यता का प्रमाण समझकर हम इस नीति का व्यवहार करने का साहस न कर सके। बीस-बाईस अनुभवी और शिक्षण शास्त्र के आचार्य क बारह-तेरह साल के उद्दंड़ बालक का सुधार न कर सकें, यह विचार बहुत ही निराशाजनक था। यों तो सारा स्कूल उससे त्राहि-त्राहि करता था, मगर सबसे ज्यादा संकट में मैं था, क्यों कि वह मेरी कक्षा का छात्र था, और उसकी शरारतों का कुफल मुझे भोगना पड़ता था । मैं स्कूल आता तो हरदम यही खटका लगा रहता कि देखें आज क्या विपत्ति आती है। क दिन मैंने अपने मेज की दराज खोली, तो उसमें से क बड़ा सा मेंढक निकल पड़ा, मैं चौंककर पीछे हटा तो क्लास में क शोर मच गया । उसकी ओर सरोष नेत्रों से देख कर रह गया। सारा घंटा उपदेश में बीत गया और वह पट्ठा सिर झुका नीचे मुस्करा रहा था। मुझे आश्चर्य होता था कि यह नीचे की कक्षाओं में कैसे पास हुआ। क दिन अविचलित भाव से कहा-आप मेरे पास होने की चिन्ता न करें। मैं हमेशा पास हुआ हूँ और अबकी भी हो जाऊँगा।

'असंभव !'

'असंभव संभव हो जायगा !'

मैं साश्चर्य उसका मुँह देखने लगा। जहीन से जहीन लड़का भी अपनी सफलता का दावा इतने निर्विवाद रूप से न कर सकता था। मैंने सोचा, वह प्रश्न पत्र उड़ा लेता होगा। मैंने प्रतिज्ञा की, अबकी इसकी चाल क भी न चलने दूँगा।

देखूँ कितने दिन इस कक्षा में पड़ा रहता है। आप घबड़ा कर निकल जायगा।

वार्षिक परीक्षा के अवसर पर मैंने असाधारण देख-भाल से काम लिया, मगर जब

सूर्यप्रकाश का उत्तर-पत्र देखा तो मेरे विस्मय की सीमा न रही। मेरो दो पर्चे थे, दोनों में उसके नम्बर कक्षा में सबसे अधिक थे ! मुझे खूब मालूम था कि वह मेरे किसी पर्चे का कोई प्रश्न भी हल नहीं कर सकता। मैं इसे सिद्ध कर सकता था, मगर उसके उत्तर-पत्रों को क्या करता। लिपि में इतना भेद न था जो

कोई संदेह उत्पन्न कर सकता। मैंने प्रिंसिपल से कहा, तो वह भी चकरा गये; मगर उन्हें भी जान

बूझकर मक्खी निगलनी पड़ी। मैं कदाचित् स्वभाव से ही निराशावादी हूँ। अन्य अध्यापकों को मैं सूर्य प्रकाश के विषय में जरा भी चिंतित न पाता था। मानो`से लड़कों का स्कूल में आना कोई नयी बात नहीं; मगर मेरे लि वह क विकट रहस्य था। अगर यही ढ़ंग रहे तो क दिन वह या तो जेल में होगा या पागल खाने में।

उसी साल मेरा तबादला हो गया। यद्यपि यहाँ का जलवायु मेरे अनुकूल था, प्रिंसिपल और अन्य अध्यापकों से मैत्री हो गयी थी, मगर मैं अपने तबादले से खुश हुआ ; क्यों कि सूर्यप्रकाश मेरे मार्ग का काँटा न रहेगा। लड़कों ने मुझे विदाई का दावत दी ; और सब के सब स्टेशन तक पहुँचाने आये। उस वक्त सभी लड़के आँखों से आँसू भरे हु थे ! मैं भी अपने आँसुओं को न रोक सका। सहसा मेरी निगाह सूर्यप्रकाश पर पड़ी, जो सबसे पीछे लज्जित खड़ा था। मुझे`सा मालूम हुआ कि उसकी आँखें भी भीगीं थीं। मेरा जी बार-बार चाहता था कि चलते-चलते उससे दो चार बात कर लूँ। शायद

वह भी मुझ से कुछ कहना चाहता था ; मगर न मैंने पहले बातें कीं, न उसनें ; हालाँकि मुझे बहुत

दिनों तक इसका खेद रहा। उसकी झिझक तो क्षमा योग्य थी, पर मेरा अवरोध अक्षम्य

था। संभव था, उस करूणा और ग्लानि की दशा में मेरी दो-चार निष्कपट बातें उसके दिल पर असर असर; कर जातीं, मगर इन्हीं खोये हु अवसरों का नाम तो जीवन है। गाड़ी मंद गति से चली लड़के कई कदम उसके साथ दौड़े । मैं खिड़की से बाहर सिर निकाले खड़ा था। कुछ देर तक मुझे उनके हिलते हु रूमाल नजर आये फिर वह रेखाँ आकाश में विलीन हो गयीं ; मगर क अल्पकाय मूर्ति अब भी प्लेटफार्म पर खड़ी थी। मैंने अनुमान किया वह सूर्यप्रकाश है। उस समय मेरा हृदय किसी विकल कैदी की भाँति घृणा, मालिन्य और उदासीनता के बंधनों को तोड़-तोड़कर उससे गले मिलने के लि तड़प उठा।

नये स्थान की नयी चिन्ताओं ने बहुत जल्द मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लिया। पिछले दिनों की याद क हसरत बन कर रही गयी। न किसी का कोई खत आया न , न मैंने कोई खत लिखा। शायद दुनिया का यही दस्तूर है। वर्षा के बाद वर्षा की हरियाली कितने दिनों रहती है ? संयोग से मुझे इंग्लैण्ड में विद्याभ्यास करने का अवसर मिल गया। वहाँ तीन साल लग गये। वहाँ से लौटा, तो क कालेज का प्रिंसिपल बना दिया गया। यह सिद्धि मेरे लि बिल्कुल आशातीत थी । मेरी भावना स्वप्न में भी इतनी दूर नहीं उड़ी थी, किन्तु पदलिप्सा अब किसी और भी ऊँची डाली पर आश्रय लेना चाहती थी। शिक्षा मंत्री से रब्त-जब्त पैदा किया। मंत्री महोदय मुझ पर कृपा रखते थे; मगर वास्तव में शिक्षा के मौलिक सिद्धान्तों का उन्हें ज्ञान न था। मुझे पाकर उन्होंने सारा भार मेरे ऊपर डाल दिया। घोड़े पर सवार वह थे, लगाम मेरे हाथ में थी। फल यह हुआ कि उनके राजनैतिक विपक्षियों से मेरा विरोध हो गया । मुझ पर जा-बेजा आक्रमण होन लगे। मैं सिद्धान्त रूप से अनिवार्य शिक्षा का विरोधी हूँ। मेरा विचार है कि हर क मनुष्य को उन विषयों में ज्यादा स्वाधीनता होनी चाहि, जिसका

उससे निज का सम्बन्ध है। मेरा विचार है कि यूरोप में अनिवार्य शिक्षा की जरूरत है, भारत में नहीं। भौतिकता पश्चिमी सभ्यता का मूल तत्व है। वहाँ किसी काम की प्रेरणा आर्थिक लाभ के आधार पर होती है। जिन्दगी की जरूरतें ज्यादा हैं, इसलि जीवन-संग्राम भी अधिक भीषण हैं। माता-पिता भोग के दास होकर बच्चों को जल्द-जल्द कुछ कमाने पर मजबूर करते हैं। इसकी जगह कि वह मद का त्याग करके क शिलिंग रोज की बचत कर

लें, वे अपने कमसिन बच्चे को क शिलिंग की मजदूरी करने के लि दबायेंगे। भारतीय जीवन में सात्विक सरलता है। हम उस वक्त तक बच्चों से मजदूरी

नहीं कराते जब तक परिस्थित हमें विवश न कर दे। दरिद्र से दरिद्र हिन्दुस्तानी मजदूर भी शिक्षा के उपकारों का कायल है। उसके मन से यह अभिलाषा होती है कि मेरा बच्चा चार अक्षर पढ

जाय। इसलि नहीं कि उसे कोई अधिकार मिलेगा; बल्कि केवल इसलि कि विद्या मानवी शील का श्रृंगार

है। अगर यह जान कर भी वह अपने बच्चे को मदरसे नहीं भेंजता, तो समझ लेना चाहि वह मजबूर है।`सा दशा में उस पर कानून का प्रहार करना मेरी दृष्टि से न्याय संगत नहीं है इसके सिवाय मेरे विचार में अभी हमारे देश में योग्य शिक्षकों का अभाव है। अर्द्ध शिक्षित और अल्प वेतन पाने वाले अध्यापकों से आप यह आशा नहीं कर सकते कि वह कोई ऊँचा आदर्श अपने सामने रख सकें। अधिक से अधिक इतना ही होगा कि चार-पाँच वर्ष में बालक को अक्षर ज्ञान हो जायेगा। मैं इसे पर्वत खोद कर चुहिया निकालने के तुल्य समझता हूँ। वयस प्राप्त हो जाने पर यह मामला क महीने में आसानी से तय किया जा सकता है। मैं अनुभव से कह सकता हूँ कि युवावस्था में हम जितना ज्ञान क महीने में प्राप्त कर सकते हैं, उतना बाल्यावस्था में तीन साल में भी नहीं कर सकते, फिर ख्मख्वाह बच्चों को मदरसे में कैद करने से क्या लाभ ? मदरसे के बाहर रहकर स्वच्छ वायु तो मिलती ; प्राकृतिक अनुभव तो प्राप्त होते। पाठशाला में बन्द कर के

तो आप उसके मानसिक और शारीरिक दोनों विधानों की जड़ काट देते हैं। इसलि जब प्रांतीय व्यवस्थापिका सभा में अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव पेश हुआ, तो मेरी प्रेरणा से मिनिस्टर साहब ने उसका विरोध किया। नतीजा यह हुआ कि

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। फिर क्या था । मिनिस्टर साहब और मेरी वह ले-दे हुई कि कुछ न

पूछि। व्यक्तिगत आक्षेप किये जाने लगे। मैं गरीब की बीवी था, मुझे सबकी भाभी बनना पड़ा। देश-द्रोही, उन्नति का शत्रु और नौकरशाही का गुलाम कहा गया। मेरे कालेज में जरा-सी भी कोई बात होती तो कौंसिल में मुझी पर वर्षा होने लगती। मैंने क चपरासी को पृथक् किया। सारी कौंसिल पंजे झाड़ कर मेरे पीछे पड़ गयी। आखिर मिनिस्टर को मजबूर होकर उस चपरासी को बहाल करना पड़ा। यह अपमान मेरे लि असह्य था । शायद कोई भी इसे सहन न कर सकता। मिनिस्टर साहब से मुझे शिकायत नहीं । वह मजबूर थे। हाँ, इस वातावरण में काम करना मेरे लि दुःसाध्य हो गया। मुझे अपने कालेज के आंतरिक संगठन का भी अधिकार नहीं ! अमुक क्यो परीक्षा में भेंजा गया, अमुक के बदले, अमुक को क्यों नहीं छात्रवृत्ति दी गई, अमुक अध्यापक को अमुक कक्षा क्यों नहीं दी जाती है। इस तरह के सारहीन आक्षेपों ने मेरे नाक में दम कर दिया। इस नई चोट ने कमर तोड़ दी। मैंने इस्तीफा दे दिया।

मुझे मिनिस्टर साहब से इतनी आशा अवश्य थी कि वह कम से कम इस विषय में न्याय-परायणता से काम लेंगे। मगर उन्होने न्याय की जगह नीति को मान्य समझा और मुझे कई साल की भक्ति का फल यह मिला कि मैं पदच्युत कर दिया गया। संसार का`सा कटु अनुभव मुझे अब तक न हुआ था। ग्रह भी कुछ बुरे आ गये थे ; उन्हीं दिनों पत्नी का देहान्त हो गया। अन्तिम दर्शन भी न कर सका। सन्ध्या समय नदी तट पर सैर करने गया था। वह कुछ अस्वस्थ थीं। लौटा तो उनकी लाश मिली। कदाचित् हृदय की गति बन्द हो गयी थी । इस आघात ने कमर तोड़ दी। माता के प्रसाद और आशीर्वाद से बड़े-बड़े महान पुरूष कृतार्थ हो गये थे। मैं जो कुछ हुआ, पत्नी के प्रसाद और आशीर्वाद से हुआ। वह मेरे भाग्य की विधात्री थीं। कितना अलौकिक त्याग था, कितना विशाल धैर्य । उनके माधुर्य में तीक्ष्णता का नाम भी न था। मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी उनकी भृकुटी संकुचित देखी हो। निराश होना तो जानती ही न थीं। मैं कई बार सख्त बीमार पड़ा हूँ। वैद्य भी

निराश हो गये पर वह अपने धैर्य और शांति से अणुमात्र भी विचलित नहीं हुई। उन्हें विश्वास था कि वे अपने पति के जीवन काल में मरेंगी और वही हुआ भी। मैं जीवन में अब तक उन्हीं के सहारे खड़ा था। जब वह अवलब ही न रहा, तो जीवन कहाँ रहता। खाने और सोने का नाम जीवन नहीं है।

जीवन नाम है सदैव आगे बढ़ते रहने की लगन का। यह लगन गायब हो गयी । मैं संसार से विरक्त हो गया। और कांत वास में जीवन के दिन व्यतीत करने का निश्चय करके क छोटे से गाँव में जा बसा। चारों तरफ ऊँचे-ऊँचे टीले थे, क ओर गंगा बहती थी। मैंने नदी के किनारे क छोटा सा घर

बना लिया और उसी में रहने लगा।

मगर काम करना तो मानवी स्वभाव है। बेकारी में जीवन कैसे कटता। मैंने क छोटी सी पाठशाला खोल ली ; क वृक्ष की छाँह में गाँव के लड़कों को जमा कर कुछ पढ़ाया करता था। उसकी यहाँ इतनी ख्याति हुई कि आस-पास के गाँव के छात्र भी आने लगे।

क दिन मैं अपनी कक्षा को पढ़ा रहा था कि पाठशाला के पास क मोटर आकर रूकी और उसमें से जिले के डिप्टी कमिश्नर उतर पड़े। मैं उस समय केवल कुर्ता और धोती पहने हु था। इस

वेश में क हाकिम से मिलते हु शर्म आ रही थी। डिप्टी कमिश्नर मेरे समीप आ तो मैंने झेंपते हु हाथ बढ़ाया मगर वह मुझसे हाथ मिलाने के बदले मेरे पैरों की ओर झुके और उन पर सिर रख लिया। मैं कुछ`सा सिटपिटा गया कि मेरे मुँह से क शब्द भी न निकला। मैं अंगरेजी अच्छी लिखता हूँ, दर्शनशास्त्र का भी आचार्य हूँ, व्याखान भी अच्छे दे लेता हूँ, मगर इन गुणों में क भी श्रद्धा के योग्य नहीं। श्रद्धा तो ज्ञानियों और साधुओं ही के अधिकार की वस्तु है। अगर मैं ब्राह्मण होता, तो क बात थी। हालाँकि क सिविलियन का किसी ब्राह्मण के पैरो पर सिर रखना भी अतिचिंतनीय है।

मैं अभी इसी विस्मय में पड़ा हुआ था कि डिप्टी कमिश्नर ने सिर उठाया और मेरी तरफ देख कर कहा-आपने शायद मुझे पहचाना नहीं।

इतना सुनते ही मेरे स्मृति-नेत्र खुल ग, बोला- आपका नाम सूर्यप्रकाश तो नहीं है ?

'जी हाँ, मैं आपका वही अभागा शिष्य हूँ ।'

'बारह तेरह वर्ष हो ग।'

सूर्यप्रकाश ने मुस्कुरा कर कहा-अध्यापक लड़कों को भूल जाते हैं, पर लड़के उन्हें हमेशा याद करते हैं।

मैंने उसी विनोद भाव से कहा--तुम जैसे लड़कों को भूलना असम्भव है !

सूर्यप्रकाश ने विनीत स्वर से कहा-उन्हीं अपराधों को क्षमा कराने के लि सेवा में आया हूँ। मैं सदैव आपकी खबर लेता रहता था। जब आप इंगलैंड गये, तो मैंने आपके लि कई बार बधाई का पत्र लिखा ; पर उसे भेज न सका। जब आप प्रिंसिपल हु, मैं इंगलैंड जाने को तैयार था। वहाँ मैं पत्रिकाओं में आपके लेख पढ़ता रहता था। जब लौटा तो मालूम हुआ कि आपने इस्तीफा दे दिया और कहीं देहात में चले ग हैं। इस जिले में आते हु मुंझे क वर्ष से अधिक हुआ, पर इसका जरा भी अनुमान न था कि आप यहाँ कांत में सेवन कर रहे हैं। इस उजाड़ गाँव में आपका जी कैसे लगता

है ? इतनी ही अवस्था में आपने वानप्रस्थ ले लिया ?

मैं नहीं कह सकता कि सूर्यप्रकाश कि उन्नति देखकर मुझे कितना आश्चर्यमय आनन्द हुआ। अगर वह मेरा पुत्र होता, तो भी इससे अधिक आनन्द न होता। मैं उसे अपने झोपड़े में लाया और अपनी राम कहानी कह सुनाई।

सूर्यप्रकाश ने कहा- तो कहि कि अपने ही क भाई के विश्वासघात के शिकार हु। मेरा अनुभव तो बहुत कम है ; मगर इतने ही दिनों में मुझे मालूम हो गया है कि हम लोग अभी अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करना नहीं जानते। मिनिस्टर साहब से भेंट हुई, तो पूछूँगा कि क्या यही उनका

धर्म था।

मैंने जवाब दिया-भाई, उनका दोष नहीं । संभव है इस दशा में मैं भी वहीं करता, जो उन्होने किया। मुझे अपनी स्वार्थलिप्सा की सजा मिल गयी और उसके लि मैं उनका

णी हूँ। बनावट नहीं , सत्य कहता हूँ कि यहाँ मुझे जो शांति है ,वह और कहीं न थी। इस कान्त जीवन में मुझे जीवन के तत्वों का वह ज्ञान हुआ। जो संपत्ति और अधिकार की दौड़ में किसी तरह सम्भव न था। इतिहास और भूगोल के पोथे चाट कर और यूरोप के विद्यालयों की शरण जाकर भी मैं अपनी ममता को मिटा न सका, बल्कि यह रोग दिन-दिन और असाध्य होता जाता था। आप सीढ़ियों पर पाँव रखे बगैर छत

की ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकते। संपत्ति की अट्टालिका तक पहुँचने में दूसरी जिन्दगी ही जीनों का

काम कर देती है। आप उन्हें कुचल कर ही लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। वहाँ सौजन्य और सहानुभूति का स्थान ही नहीं । मुझे `सा मालूम होता है कि उस वक्त मैं हिंस्र जन्तुओं से घिरा हुआ था और मेरी सारी शक्तियाँ अपनी आत्म-रक्षा में लगी रहती थीं। यहाँ मैं अपने चारों ओर संतोष और सरलता देखता हूँ। मेरे पास जो लोग आते हैं, कोई स्वार्थ लेकर नहीं आते और न मेरी सेवाओं में प्रशंसा या गौरव का लालसा है।

यह कर कर मैंने सूर्यप्रकाश के चेहरे की ओर गौर से देखा। कपट-मुस्कान की जगह ग्लानि

का रंग था। शायद यह दिखाने आया था कि आप जिसकी तरफ से निराश हो ग थे, वह अब इस पद को सुशोभित कर रहा है। वह मुझसे अपने सदुद्योग का बखान चाहता था। मुझे अब अपनी भूल मालूम हुई। क सम्पन्न आदमी के सामने समृद्धि की निंदा उचित नहीं। मैंने तुरन्त बात पलट कर कहा-मगर तुम अपना हाल तो कहो। तुम्हारी यह कायापलट कैसे हुई ? तुम्हारी शरारतों को याद करता हूँ तो अब भी रौं खड़े हो जाते हैं। किसी देवता के वरदान के सिवा और कहीं यह विभूति न

प्राप्त हो सकती थी।

सूर्यप्रकाश ने मुस्करा कर कहा -- आपका आशीर्वाद था।

मेरे बहुत आग्रह करने पर सूर्यप्रकाश ने अपना वृतान्त सुनाना शुरू किया- आपके चले जाने के कई दिन बाद मेरा ममेरा भाई स्कूल में दाखिल हुआ ।. उसकी उम्र आठ नौ साल से ज्यादा न थी। प्रिंसिपल साहब उसे होस्टल में न लेते थे और न मामा साहब उसके ठहरने का प्रबन्ध कर सकते

थे। उन्हें इस संकट काल में देख कर मैंने प्रिंसिपल साहब से कहा- उसे मेरे कमरे में ठहरा दीजि। प्रिंसिपल साहब ने इसे नियम विरूद्ध बतलाया। इस पर मैंने बिगड़ कर उसी दिन होस्टल छोड़ दिया, और क किरा का मकान लेकर मोहन के साथ रहने लगा। उसकी माँ कई साल पहले मर चुकी थी। इतना दुबला-पतला, कमजोर और गरीब लड़का था कि पहले दिन से मुझे उस पर दया आने लगी। कभी उसके सिर में दर्द होता,कभी ज्वर हो आता। आये दिन कोई न कोई बीमारी खड़ी रहती थी। इधर साझ हुई और उसे झपकियाँ आने लगीं। बड़ी मुश्किल से भोजन करने उठता। दिन चढे तक सोया करता और जब तक मैं गोद में उठाकर बिठा न देता, उठने का नाम न लेता। रात को बहुधा चौंक कर मेरी चारपाई पर आ जाता और मेरे गले लिपट कर सोता। मुझे उस पर कभी क्रोध न आता। कह नहीं सकता, क्यों मुझे उससे प्रेम हो गया। मैं जहाँ पहले नौ बजे सोकर उठता था, अब तड़के उठ बैठता और उसके लि दूध गरम करता। फिर उसे उठा कर आँख धुलाता और नाश्ता कराता। उसके स्वास्थ्य के विचार से नित्य वायु सेवन को ले जाता। मैं जो कभी किताब लेकर बैठता न था, इसे घंटो पढ़ाया करता। मुझे अपने दायित्व का इतना ज्ञान कैसे हो गया, इसका मुझे आश्चर्य है। उसे कोई शिकायत हो जाती तो मेरे प्राण नखों में समा जाते। डाक्टर के पास दौड़ता, दवाँ लाता और मोहन को खुशामद करके दवा पिलाता। सदैव यह चिन्ता लगी रहती

थी कि कोई बात उसकी इच्छा के विरूद्ध न हो जा। उस बेचारे का वहाँ मेरे सिवा कौन था ? मेरे चंचल मित्रों में से कोई उसे चिढ़ाता या छेड़ता तो मेरी त्यौरियाँ बदल जाती थीं। कई लड़के मुझे बूढ़ी दादी कहकर चिढ़ाते थे । पर मैं हँस कर टाल देता था। मैंने उसके सामने क भी अनुचित शब्द मुँह से नहीं निकाला। यह शंका होती थी कि कहीं मेरी देखा-देखी यह भी खराब न हो जा। मैं उसके सामने इस तरह रहना चाहता था कि मुझे अपना आदर्श समझे और इसके लि यह मानी हुई बात थी कि मैं अपना चरित्र सुधारूँ। वह मेरा नौ बजे सोकर उठना, बारह बजे तक मटरगश्ती करना, नयी-नयी शरारतों के मनसूबे बाँधना और अध्यापकों की आँख बचाकर स्कूल से उड़जाना, सब आप ही आप जाता रहा। स्वास्थ्य और चरित्र पालन के सिद्धान्तों का मैं शत्रु था ; पर अब मुझसे बढ़कर उन नियमों का रक्षक दूसरा न था। मैं ईश्वर का उपहास किया करता था, मगर अब पक्का आस्तिक हो गया था । वह बड़े सरल भाव से पूछता परमात्मा सब जगह रहते हैं, तो मेरे साथ ही रहते होगें ? इस प्रश्न का मजाक उड़ाना मेरे लि असम्भव था। मैं कहता-हाँ, परमात्मा तुम्हारे, हमारे, सबके पास रहते हैं और हमारी

रक्षा करते हैं. यह आश्वासन पाकर उसका चेहरा आनन्द से खिल उठता था। कदाचित् वह परमात्मा की सतह का अनुभव करने लगता था। साल ही भर में मोहन कुछ से कुछ हो गया। मामा साहब दो बार आ तो उसे देख कर चकित हो ग। आँखों आँसू भर कर बोले - बेटा ! तुमने इसको जिला दिया, नहीं तो मैं निराश हो चुका था। इसका पुनीत फल तुम्हें ईश्वर देंगे। इसकी माँ स्वर्ग में बैठी आशीर्वाद दे रही है।

सूर्यप्रकाश की आँखें उस वक्त भी सजल हो गई थीं।

मैंने पूछा -मोहन तुम्हें बहुत प्यार करता होगा ?

सूर्यप्रकाश के सजल नेत्रों से हसरत से भरा हुआ आनन्द चमक उठा, बोला- वह मुझे क मिनट के लि भी न छोड़ता था। मेरे साथ बैठता, मेरे साथ खाता, साथ सोता। मैं ही उसका सब कुछ था। आज वह संसार में नहीं हैं, मगर मेरे लि वह अब भी उसी तरह जीता जागता है। मैं जो कुछ हूँ ,उसी का बनाया हुआ हूँ। अगर वह दैवी विधान की भाँति मेरा पथ प्रदर्शक न बन जाता तो शायद आज मैं किसी जेल में पड़ा होता। क दिन मैंने कह

दिया - अगर तुम रोज नहा न लिया करोगे, मैं तुमसे न बोलूँगा। नहाने से वह न जाने क्यों जी चुराता था। मेरी धमकी का फल यह हुआ कि वह नित्य प्रातःकाल नहाने लगा। कितनी ही सर्दी क्यों न हो, कितनी ही ठंड़ी हवा चले, लेकिन वह स्नान अवश्य करता था।

देखता रहता था, मैं किस बात से खुश हूँ । क दिन मैं कई मित्रों के साथ थियेटर देखने

चला गया, ताकीद कर गया था कि तुम खाना खाकर सो रहना । तीन बजे रात को लौटा तो देखा वह बैठा हुआ है। मैंने पूछा-तुम सोये नहीं ? बोला-नींद नहीं आई। उस दिन से मैंने थिटर जाने का नाम नहीं लिया। बच्चों में प्यार की जो भूख होती है-दूध, मिठाई और खिलौने से भी ज्यादा मादक-जो माँ की गोद के सामने संसार की निधि की भी परवाह नहीं करती मोहन की वह भूख कभी सन्तुष्ट न होती थी ; पहाड़ो से टकराने वाली सारस की आवाज की तरह वह सदैव उसकी नसों में गूँजा करती थी। जैसे भूमि पर फैली हुई लता कोई सहारा पाते ही उससे चिपट जाती है, वही

हाल मोहन का था। वह मुझसे`सा चिपट गया था कि पृथक् किया जाता तो उसकी कोमल बेली के टुकड़े-टुकड़े हो जाते। वह मेरे साथ तीन साल रहा और तब मेरे जीवन में प्रकाश की क रेखा डाल कर अन्धकार में विलीन हो गया। उस जीर्ण काया में कैसे-कैसे अरमान भरे हु थे। कदाचित ईश्वर ने मेरे जीवन में अवलम्बन की सृष्टि करने के लि उसे भेजा था । उद्देश्य पूरा हो गया तो वह क्यों रहता ?

गर्मियों की तातील थी। दो तातीलों में मोहन मेरे ही साथ रहा था । मामा जी के आग्रह करने पर भी घर न गया। अब की कालेज के छात्रों ने काश्मीर यात्रा करने का निश्चय किया और मुझे उसका अध्यक्ष बनाया। कश्मीर यात्रा की अभिलाषा मुझे चिरकाल से थीं। इस अवसर को गनीमत समझा। मोहन को मामीजी के पास भेज कर काश्मीर चला गया। दो महीने बाद लौटा तो मालूम हुआ कि मोहन बीमार है। काश्मीर में मुझे बार-बार मोहन की याद आती थी और जी चाहता

था लौट आऊँ आऊँ। मुझे उस पर इतना प्रेम है इसका अंदाज मुझे कश्मीर जाकर हुआ,

लेकिन मित्रों ने पीछा न

छोड़ा। उसकी बीमारी की खबर पाते ही मैं अधीर हो उठा और दूसरे ही दिन उसके पास जा पहुँचा। मुझे देखते ही उसके पीले और सूखे हु चेहरे पर आनन्द की स्फूर्ति झलक पड़ी। मैं दौड़कर उसके गले से लिपट गया। उसकी आँखों में वह दूर दृष्टि और चेहरे पर अलौकिक आभा थी जो मँडराती हुई मृत्यु की सूचना देती है। मैंने आवेश से काँपते हु स्वर में पूछा- यह तुम्हारी क्या दशा है मोहन ? दो ही महीने में यह नौबत पहुँच गयी ? मोहन ने सरल मुस्कान के साथ कहा-आप काश्मीर की सैर करने ग थे, मैं आकाश की सैर करने जा रहा हूँ।

मगर यह दुःख कहानी कह कर मैं रोना और रूलाना नहीं चाहता। मेरे चले जाने के बाद मोहन इतना परिश्रम से पढ़ने लगा, मानों तपस्या कर रहा हो। उसे यह धुन सवार हो गयी कि साल

भर की पढ़ाई दो महीने मे समाप्त कर ले और स्कूल खुलने के बाद मुझसे इस श्रम का प्रशंसा-रूपी उपहार प्राप्त करे। मैं किस तरह उसकी पीठ ठोकूँगा, शाबाशी दूँगा, अपने मित्रों से बखान करूँगा, इन भावनाओं ने अपने सारे बालोचित उत्साह और तल्लीनता के साथ उसे वशी भूत कर लिया।

मामा जी को दफ्तर के कामों से इतना अवकाश कहाँ कि उसके मनोरंजन का ध्यान रखें। शायद उसे प्रतिदिन कुछ न कुछ पढ़ते देख कर वह दिल में खुश होते थे। उसे खेलते न देखकर भला क्या

कहते ? फल यह हुआ कि मोहन हल्का-हल्का ज्वर आने लगा ; किन्तु उस दशा में भी उसने पढ़ना न छोड़ा। कुछ और व्यतिक्रम भी हु, ज्वर का प्रकोप और भी बढ़ा; पर उस दशा में भी ज्वर कुछ हल्का हो जाता तो किताब देखने लगता था। उसके प्राण मुझ में ही

बने रहते थे। ज्वर दशा में भी नौकरों से पूछता-भैया का पत्र आया ? वह कब आयेंगे ? इसके सिवा और कुछ दूसरी अभिलाषा न थी। अगर मुझे मालूम होता कि मेरी कश्मीर यात्रा इतनी महँगी पड़ेगी तो उधर जाने का नाम न लेता। उसे बचाने के लि मुझसे जो कुछ हो, सकता था वह मैंने सब किया, किन्तु बुखार टायफायड था,

उसकी जान लेकर ही उतरा। उसके जीवन का स्वप्न मेरे लि किसी

षि का आशीर्वाद बन कर मुझे प्रोत्साहित करने लगा और यह उसी का शुभ फल है कि आज आप मुझे इस दशा में देख रहे हैं।

मोहन की बाल अभिलाषाओं को प्रत्यक्ष रूप में लाकर मुझे यह संतोष होता है कि शायद उसकी पवित्र आत्मा मुझे देखकर प्रसन्न होती हो। यही प्रेरणा थी जिसने कठिन से कठिन परीक्षाओं में भी मेरा बेड़ा पार लगाया, नहीं तो मैं आज भी वही मंद-बुद्धि सूर्यप्रकाश हूँ, जिसकी सूरत से आप चिढ़ते थे।

उस दिन से मैं कई बार सूर्यप्रकाश से मिल चुका हूँ। जब वह इस तरफ आ जाता है तो बिना मुझसे मिले नहीं जाता है। मोहन को अब भी वह अपना इष्टदेव समझता है। मानव-प्रकृति का यह क`सा रहस्य है जिसे मैं आज तक नहीं समझ सका।